A Multidisciplinary Peer Reviewed & Refereed Journal. ISSN: 2231-1351

श्रीमद भगवदगीता में योग की अवधारणा का दार्शनिक विश्लेषण

राजवीर कुमार*

rajveer15081994@gmail.com

श्रीमद्भगवद गीता हमारे सम्मुख केवल एक ब्रह्म विया ही प्रस्तुत नहीं करती, अपितु एक प्रकार का अनुशासन (योगशास्त्र) भी प्रस्तुत करती है। योग शब्द गीता के लिए अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण है। साधारण अर्थों में आज कुछ आसन प्राणायाम आदि के अभ्यास को योग कह दिया जाता है। किन्तु गीता में योग का अभिप्राय अत्यन्त व्यापक, गहन तथा विस्तृत है। योग शब्द 'युज' धातु से बना है, जिसका अर्थ है 'बाँधना' या 'जोड़ना'। योग का अर्थ है अपनी आत्मिक शक्तियों को एक जगह बाँधना, उन्हें सन्तुलित करना और उन्हें बढ़ाना। अपने व्यक्तित्व के तीव्रत्तम केन्द्रीकरण द्वारा अपनी ऊर्जाओं को एकत्रित करके हम संकीर्ण 'अहं' से अनुभवातीत व्यक्तित्व तक पहुँचने का मार्ग बनाते हैं। गीता में योग को बहुत ही महत्वपूर्ण सिद्धांत माना गया है तथा एकात्मिक तथा आध्यात्मिक साधना के रूप में स्वीकार किया गया है। योग की महानता के कारण ही गीता 'योगशाख' कहलाती है। वास्तव में श्रीमद् भगवद गीता के प्रत्येक अध्याय को 'ब्रह्मविद्या' या 'योगशास्त्र' कहा गया है।

श्रीमद्भगवद गीता हमारे सम्मुख एक सर्वांग सम्पूर्ण योगशास्त्र प्रस्तुत करती है, जो विस्तृत, लचीला और अनेक पहलुओं वाला है, जिसमें आत्मा के विकास और ब्रहा तक पहुँचने के विविध दौर सम्मिलित है। किन्तु प्रश्न यह है कि योग क्या है? ईश्वर प्राप्ति के उपाय को श्रीमद् भगवद गीता में योग कहा गया है। कुछ लोग कहते हैं कि यह वही योग है जिसके आदिवक्ता हिरण्यगर्भ है और जिसका वर्णन महाभारत में कई स्थानों पर हुआ है तथा जिसका शास्त्रीय विवरण पतंजलि के योगसूत्र में हुआ है। स्वयं श्रीमद् भगवद गीता में श्रीकृष्ण ने कहा है- मैंने इस योग को विवस्वान को बताया था। विवस्वान ने मनु को बताया और मनु ने इश्वाकु को बताया था। इस परम्परा से राजर्षियों ने इस योग को प्राप्त किया। कालान्तर में यह महान योग नष्ट हो गया है। हे अर्जुन, वही योग मैं तुमको बता रहा हूं। किन्तु गीता में एक यही योग नहीं है, यहाँ विभिन्न योग बताए गए है। कुछ लोग ध्यान से आत्मा को देखते हैं उन्हें 'ध्यान योग' कहते हैं, कुछ लोग आत्मा से ही आत्मा को देखते हैं उन्हे 'ज्ञान योग' कहते हैं, कुछ लोग सांख्य योग से आत्मा को देखते हैं उन्हें 'सांख्य योग' कहते हैं एवं कुछ लोग कर्म से आत्मा को देखते हैं उन्हे 'कर्म योग' कहते हैं। इस प्रकार श्रीमद् भगवद गीता में ज्ञान योग, ध्यान योग, सांख्य योग, कर्म योग, भक्ति योग तथा श्रवण योग एवं और भी विभिन्न योगों का उल्लेख है।

वैसे तो श्रीमद्भगवद गीता में कई योग हैं पर इनमें से चार योग बहुत ही महत्वपूर्ण बताए गए हैं :-

* **शोधार्थी, स्नातक उत्तर दर्शनशास्त्र विभाग, वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)**

(1) कर्मयोग :

कर्म करें एवं उसे परमात्मा से जोड़ दें, ये कर्म योग है। कर्मयोग गीता का सबसे महत्वपूर्ण विषय है। गीता में कर्मयोग का सबसे गंभीर विवेचन मिमांस्को ने किया है। लोकमान्य तिलक प्रभुती विद्वान गीता को कर्मयोग शास्त्र ही मानते हैं तथा तिलक के अनुसार गीता कर्मयोग प्रधान ग्रंथ है। भगवान श्री कृष्ण ने गीता में अर्जुन को कर्मयोग का ही उपदेश दिया था।

श्रीमद्भगवद गीता के अनुसार शुभ और अशुभ कर्मों का फल भी क्रमशः शुभ और अशुभ ही होता है। कर्मयोग व्यक्ति के कर्म का अर्थ होता है धार्मिक, सामाजिक, नैतिक, व्यक्तिगत और व्यवसायिक कर्तव्यों का पालन करना।

(2) ज्ञानयोग :

ज्ञान प्राप्त करें और उसका आधार परमात्मा हो, ये ज्ञान योग है। ज्ञान योग आत्म साक्षात्कार (Self Realization) के मार्ग में सबसे जरूरी यह जानना है कि जो भी हम अपनी इंद्रियों के द्वारा अनुभव करते हैं, क्या वही सत्य है या उसके आगे भी कुछ और है। जब हमारे अंदर यह जानने की इच्छा जागने लगती है तो हम शास्त्रों का अध्ययन करके या गुरु के माध्यम से हम यह समझने लगते हैं कि हम केवल शरीर या मानवीय इंद्रिया नहीं है बल्कि दिव्य आत्माएं हैं जो कि स्थाई, शाश्वत या अनंत है। ज्ञान योग का उपदेश ज्ञान का विकास करना है ताकि हम यह जान सके कि हम कौन हैं और इस जीवन और मृत्यु के चक्र से हम कैसे बाहर आ सकते हैं। ईश्वर की प्राप्ति की खोज के लिए हमारा पहला चरण है ज्ञान योग। ज्ञान योग ईश्वर से संबंध स्थापित करने का आध्यात्मिक मार्ग है। परंतु जिन्होंने अपने ज्ञान के द्वारा अज्ञानता का नाश किया है, उनका यह ज्ञान सूर्य की तरह परमतत्व परमात्मा को प्रकाशित कर देता है। अपनी सत्ता को और शरीर को अलग-अलग मानना ज्ञान है तथा एक मानना अज्ञानता है। ज्ञान मार्ग के द्वारा भी जीव और शिव का आत्मा और परमात्मा का सम्बन्ध हो सकता है।

(3) भक्तियोग :

भक्ति में हमारा मन परमात्मा की स्तुति करे, प्राणी मात्र में परमात्मा के दर्शन हो जाएं, ये भक्ति योग है। भक्ति शब्द 'राज' धातु से बना है, जिसका अर्थ 'सेवा करना' होता हैं। शक्ति या सेवा के द्वारा भगवान से सम्बंध स्थापित करने का नाम 'भक्ति योग' है। महर्षि नारद के अनुसार भगवान के प्रति उत्कृष्ट प्रेम ही भक्ति है। महर्षि शांडिल्य के अनुसार यह परमात्मा के प्रति सर्वोच्च अभिलाषा है। इस अभिलाषा के कारण ही भक्त भगवान के सामने आत्म समर्पण करता है। भक्ति योग भगवान की गहन भक्ति का अभ्यास है। यह सभी युर्गा में सबसे ज्यादा कठिन माना गया है क्योंकि भक्ति योग को केवल वही लोग कर सकते हैं जिन्हें आत्मज्ञान हो गया हो। भगवान को केवल भक्ति के माध्यम से ही अनुभव किया जा सकता है, किसी अन्य माध्यम से नहीं। शरणागति वही लोग बन जाते हैं जो लोग ईश्वर के प्रति पूर्ण आत्मसमर्पण कर लेते हैं वो भी बिना किसी शर्त के साथ। जिन लोगों को भक्ति मार्ग बहुत कठिन लगता है वही लोग शरणागति योग अपनाते हैं। केवल वही व्यक्ति इसका अभ्यास करने योग्य है जिन्हें मुक्ति की इच्छा के अलावा और कोई इच्छा नहीं है। स्वामी विवेकानंद का कहना है कि भावनाओं में ऐसी शक्ति होती है कि वे मनुष्य में निहित शक्तियों को जागरूक कर सक्रिय कर देती

है। यह संभावना तो स्पष्ट हो जाती है कि उन्हें प्रबल रूप में सक्रिय बनाने में ईश्वर प्राप्ति भी संभव है। भक्त और भगवान के मिलन को गीता में 'भक्ति योग' बललाया गया है। भक्ति योग के सहारे भक्त भगवान का सामीप्य प्राप्त करता है।

4) ध्यान योग :

ध्यान योग को आत्मा की शुद्धि, मन की स्थिरता तथा परमात्मा से एकत्व की प्राप्ति का साधन बताया गया है। यह गीता का छठा अध्याय है, जिसका नाम ही "ध्यान योग" है – "ध्यायानं योगः"। ध्यान योग का मूल उद्देश्य आत्मा को इन्द्रियों की चंचलता से मुक्त कर परमात्मा में स्थित करना है।

मुख्य तत्व:

1. चित्त की एकाग्रता (Concentration of Mind): भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि योगी को एकांत स्थान में बैठकर, स्थिर चित्त और नियंत्रण में रखे हुए इन्द्रियों के साथ ध्यान करना चाहिए – ध्यान योग, गीता में आत्म-साक्षात्कार और परमात्मा के साथ एकत्व की ओर ले जाने वाला मार्ग है। यह योग केवल बैठने की क्रिया नहीं, बल्कि एक गहन आत्मिक साधना है, जो जीवन को पूर्ण रूप से परिवर्तित कर देती है।

महर्षि पतंजलि के अनुसार 'योगश्चिप्रवृति निरोध' (योगसूत्र 81.2) अर्थात कलुषित चितवृति के उपाय को योग कहा जाता है। श्रीमद् भगवद गीता के अनुसार एक योग कर्म कौशल है (योगः कर्मसु कौशल) तो दूसरा समता योग (समतवं योग उच्चयते) है। साधारण मनुष्य के लिए मोक्ष प्राप्ति या ब्रह्मज्ञान के तीन ज्ञात मार्ग हैं। प्रथम, स्वयं को भगवान को समर्पित कर देना, दूसरा, पूजा-पाठ और तीसरा, किसी कर्मकांड में लिप्त हो जाना। परंतु इसके भी सैद्धान्तिक, भावनात्मक और व्यावहारिक रूप मे अलग-अलग भेद हैं।

मनुष्य अपने व्यक्तित्व के केवल एक ही स्तर को जानता है। परंतु इसके पीछे भी बहुत कुछ होता है, जिससे वह पूरी तरह अनभिज्ञ रहता है। जिस प्रकार हम सिर्फ प्रकाशित क्षेत्र के बारे में जानते हैं तथा अंधेरे क्षेत्र के बारे में पूरी तरह अनभिज्ञ रहते हैं। ठीक उसी प्रकार मनुष्य भी अपने व्यक्तित्व के सिर्फ बाहरी मनोवृति को ही जानता है। हालांकि वह भीतरी वस्तु उसके आचरण पर अनेक रूपों में प्रभाव डालती है। कभी-कभी मनुष्य पूर्णतः अपनी सहज वृत्ति और अपने मनोभावों के प्रभाव में आकर और अनिच्छित प्रतिक्रियाओं से वशीभूत होकर अपने स्वभाव के विपरीत भी कार्य कर बैठता है तथा अपने चेतन मन के सारे नियम के विपरीत कार्य करता है। हर मनुष्य को अपनी क्षमताओं का ज्ञान होता है। वह सामान्यतया स्वयं से और परिस्थितियों से समझौता कर लेता है और परिस्थितियों के अनुकूल कार्य करने लगता है और पूरा जीवन अनिश्चितता में ही बिताता है।

यहाँ ध्यान देने योग्य ये बात है की जब तक मानव अपनी सभी क्षमताओ और संभावनाओ को एक अनुपात में संतुलित नहीं कर लेता तब तक वह स्वयं पर नियंत्रण नहीं कर सकता। श्रीमद् भगवद गीता मे संयम को इसका निदान बताया गया है।

अपने ह्रदय में भगवान पर पूर्ण विश्वास और उसकी स्तुति ही परम ज्ञान को पाने का एकमात्र मार्ग है। श्री कृष्ण कहते हैं- ज्ञानी ही भक्त भी होता है और सर्वश्रेष्ठ भक्त होता है। ब्रह्मज्ञान के लिए या ईश्वर से संपर्क

स्थापित करने के लिए योग का अभ्यास करना चाहिए। योग का अभ्यास सत्य को प्राप्त करने के लिए तथा वास्तविकता (ब्रह्म) से संपर्क स्थापित करने के लिए किया जाना चाहिए। जैसा की पहले बताया गया हैं की अपने हृदय में भगवान पर पूर्ण विश्वास और उसकी स्तुति ही परम ज्ञान को पाने का एकमात्र मार्ग है, ठीक उसी प्रकार इष्ट की भक्ति ही भक्त और भगवान के बीच का संबंध है। श्रीमद् भगवद गीता के अनुसार द्रस्टव्य ईश्वर की पूजा हर प्रकार के असमर्थ लोगों के लिए सरलतम मार्ग है। श्रीमद् भगवद गीता में श्रीकृष्ण ने कहा है, 'हे पार्थ, जो लोग मेरी शरण में आते हैं, वे चाहे कोई भी हो, वो सभी परमगति को प्राप्त करते हैं।'

भक्ति शब्द की उत्पत्ति 'भज' धातु से हुई है, जिसका विग्रह करने पर हमे 'सेवा करना' और 'भगवान की सेवा' शब्द प्राप्त होते हैं। यह परमात्मा के प्रति अनुराग को परिलक्षित करता है। सनातन मे भगवान को दार्शनिक और आध्यात्मिक रूप में उतना नहीं जाना जाता जितना की उन्हे कृपामयी, करुणामयी और ममतामयी रूप में देखा और जाना जाता है। हमारा हृदय और मस्तिष्क उन्हे उसी रूप मे स्वीकार करता हैं। श्रीमद् भगवद गीता में उद्धृत भक्ति को बौद्धिक प्रेम की तरह परिभाषित नहीं किया गया हैं, जोकी अत्यंत गूढ और सरल जन की समझ के परे होता है। श्रीमद् भगवद गीता में जिस भक्ति का उल्लेख किया गया है उसका आधार ज्ञान और मात्र ज्ञान हैं, परंतु स्वज्ञान नहीं। जब आपका सूक्ष्म शरीर, मन, मस्तिष्क सभी स्वयं को प्रभु को समर्पित कर देते हैं तो प्रभु भी आपको आपके सभी गुण और दोषों के साथ अपना लेते हैं। यह भक्ति ज्ञान के आधार पर टिकी है, परन्तु स्वयं ज्ञान नही है। जब आत्मा अपने आपको परमात्मा के सम्मुख समर्पित कर देती हैं तब परमात्मा हमारे ज्ञान एवं हमारी त्रुटियों को अपना लेते हैं। श्रीमद् भगवद गीता में कहा गया हैं सब धर्मो (कर्तव्यों) को छोड़कर तूम केवल मेरी शरण में आ जाओ। तूम सारे विषाद और भय त्याग दो, मैं तुम्हें सब पापों (बुराइयों) से मुक्त कर दूंगा।

भक्त की भक्ति की पराकाष्ठा उसका भगवान के प्रति स्वयं को समर्पित कर देने में है। इस अवस्था मे भक्त और भगवान एक हो जाते हैं। भक्त को भगवान मे, स्वयं में और सर्वत्र भगवान के ही दर्शन होते हैं। भक्त और भगवान के बीच कोई माध्यम नहीं रहता, भक्त प्रतिपल अपने इष्ट के संपर्क में होता है।

श्रीमद्भगवद गीता में ईश्वर के प्रति पूर्ण आत्म-समर्पण की बात कही गई है। कुरुक्षेत्र के रणक्षेत्र मे गीता एक समस्या को लेकर प्रारंभ होती है। अर्जुन अपने संबंधियों, गुरुओ से युद्ध करने से मना कर देते हैं। वह कर्म से दूर रहने और संसार को त्यागने के लिए श्रीकृष्ण को ही तर्क देते हैं। तब अर्जुन के मन को कर्म के लिए परिवर्तित करने के लिए श्रीकृष्ण ने गीता का उपदेश दिया, जिसमे 'कर्मयोग' को महत्वपूर्ण बताया गया। श्रीमद् भगवद गीता में परिणाम की चिन्ता किए बिना कर्म करने का उपदेश दिया गया है। साथ ही श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है कि 'हे भौतिक सुखों को जीतने वाले अर्जुन, तू योग युक्त होकर फल की चिंता किए बिना कर्म कर, क्यूंकी ये मार्ग ही तुम्हें 'समता योग' की ओर ले जाएगा।

इस प्रकार श्रीमद् भगवद गीता मे कर्म को महत्वपूर्ण बताया गया हैं। महाभारत में जब श्रीकृष्ण अर्जुन को युद्ध करने के लिए कहते हैं तो वो आदेश नहीं देते और नाही वो किसी भी प्रकार से युद्ध को उचित कहते हैं। शंकराचार्य भी इस बात को कहते हैं की जहाँ भी श्रीकृष्ण ने युद्ध को करने के लिए कहा है वो परिस्थितिजन्य युद्ध की बात कही है। श्रीमद् भगवद गीता को स्वयं के अनुसार अनुवादित करनेवाले, भावो का

विस्तार करनेवाले प्रमुख भाष्यकारों द्वारा योग को अलग-अलग प्रकार से महत्व दिया गया हैं। शंकराचार्य तथा रामानुजाचार्य ने क्रमशः ज्ञान योग और भक्तियोग को महत्व प्रदान किया है। उसी प्रकार बालगंगाधर तिलक तथा आचार्य मधुसूदन सरस्वती ने क्रमशः कर्म योग, ज्ञान योग एवं भक्ति योग के समन्वय को महत्व प्रदान किया है। परन्तु आधुनिक युग में कर्म योग, विशेषतः निष्काम कर्म योग को ही गीता की मुख्य शिक्षा मानकर स्वीकार करनेवालों में बाल गंगाधर तिलक, महात्मा गांधी, श्रीमती एनी बेसेन्ट, पंडित मदन मोहन मालवीय, सर्वपल्ली राधाकृष्णन आदि अधिकांशतः विचारक है।

संदर्भ :-

1. **गीता प्रेस.** (2021). *श्रीमद्भगवद्गीता: हिंदी टीका सहित* (सं. 217वाँ सं.). गीता प्रेस। (श्लोक 4.1.3)
2. **गीता प्रेस.** (2021). *श्रीमद्भगवद्गीता: हिंदी टीका सहित* (सं. 217वाँ सं.). गीता प्रेस। (श्लोक 13.24–25)
3. **गीता प्रेस.** (2021). *श्रीमद्भगवद्गीता: हिंदी टीका सहित* (सं. 217वाँ सं.). गीता प्रेस। (श्लोक 2.50)
4. **गीता प्रेस.** (2021). *श्रीमद्भगवद्गीता: हिंदी टीका सहित* (सं. 217वाँ सं.). गीता प्रेस। (श्लोक 2.48)
5. तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते। प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियरु ।। **गीता प्रेस.** (2021). *श्रीमद्भगवद्गीता: हिंदी टीका सहित* (सं. 217वाँ सं.). गीता प्रेस। (श्लोक 7.17)
6. यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धर। तत्र श्रीविजयो भूतिर्भुवा नीतिर्मतिर्मम ।। **गीता प्रेस.** (2021). *श्रीमद्भगवद्गीता: हिंदी टीका सहित* (सं. 217वाँ सं.). गीता प्रेस। (श्लोक 18.78)
7. मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येउपि स्युः पापयोनयः। स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ।। **गीता प्रेस.** (2021). *श्रीमद्भगवद्गीता: हिंदी टीका सहित* (सं. 217वाँ सं.). गीता प्रेस। (श्लोक 9.32)
8. **शंकराचार्य.** (1910). *भगवद्गीता-भाष्य* (ए. माहादेव शास्त्री द्वारा टीका सहित). गीता प्रेस। सर्वोपरि करणे वासुदेवा दन्यन्नोपलभ्यते सा अनन्या भक्तिः)
9. सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचरु ।। **गीता प्रेस.** (2021). *श्रीमद्भगवद्गीता: हिंदी टीका सहित* (सं. 217वाँ सं.). गीता प्रेस। (श्लोक 18.66)
10. कर्मण्ये वाधिकारस्ते मां फलेषु कदाचन। मां कर्मफलहेतुर्भूः मांते सङ्ङ्गोसत्वकर्मणि।। **गीता प्रेस.** (2021). *श्रीमद्भगवद्गीता: हिंदी टीका सहित* (सं. 217वाँ सं.). गीता प्रेस। (श्लोक 2.47)
11. योगस्थः कुरु कर्माणि संगत्यक्त्वा धन्नजय। सिद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ।। **गीता प्रेस.** (2021). *श्रीमद्भगवद्गीता: हिंदी टीका सहित* (सं. 217वाँ सं.). गीता प्रेस। (श्लोक 2.48)
12. **गीता प्रेस.** (2021). *श्रीमद्भगवद्गीता: हिंदी टीका सहित* (सं. 217वाँ सं.). गीता प्रेस। (श्लोक 4.17)
13. किमात् युध्यस्व कृति अनुवाद मात्र न विधि **शंकराचार्य.** (1910). *भगवद्गीता-भाष्य* (श्लोक 2.18 पर भाष्य). गीता प्रेस।
14. **विकिपीडिया.** (n.d.). *भगवद्गीता*. विकिपीडिया। https://hi.wikipedia.org/wiki/भगवद्गीता
15. तिवारी, एन. के., & तिवारी, अनीता. (2018). *भारतीय धर्म एवं दर्शन में योग (भाग 1 एवं 2)*. प्रकाशन संस्थान।
16. वर्मा, वी. एम. (2014). *भगवद्गीता दर्शन का कर्म सिद्धांत*. समवेत प्रकाशन।
17. राधाकृष्णन, डॉ. सर्वपल्ली. (1948). *The Bhagavadgita* (अंग्रेज़ी अनुवाद व व्याख्या सहित). George Allen & Unwin Ltd.